भगवद्गीता के द्वारा जानने योग्य गहरा सार
(सार्थक जीवन के लिए)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के रसिकरंजन से

www.booksofsrilaprabhupada.com
booksofsrilaprabhupada@gmail.com

भ.गी. २.१ - संजय ने धृतराष्ट्र से कहाः दयाभाव से अभिभूत हुआ अर्जुन को देखकर, आँसुओं से भरी हुई उनकी आँखें तथा शोक से वशीभूत हुए उनके मन को देखकर मधुसूदन (कृष्ण) ने निम्नलिखित शब्द कहे।

भ.गी. २.२, ३ - पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने अर्जुन से कहा: संकट की घड़ी में ये विलाप तुम्हें कहाँ से आया, हे अर्जुन? जीवन के वास्तविक लक्ष्य को जानने वाले व्यक्ति का बर्ताव यह नहीं है; ना ही यह तुम्हें परम गति पर ले जाएगा, उलट अप्रतिष्ठा की ओर ले जाएगा।

भ.गी. २.४, ५ - अर्जुन ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान से कहा: भीष्म (पितामह) और द्रोणाचार्य जैसे आदरणीय ज्येष्ठों पर कैसे मैं बाणों से पलटवार कर सकता हूं, हे मधुसूदन!? उनके प्राणों की कीमत पे अपना जीवन व्यतीत करने के बजाय भीख मांगकर जीना श्रेष्ठतर होगा। हालांकि वे सांसारिक-फ़ायदे की आकांक्षा कर रहे हैं, फिर भी वे अपने वरिष्ठ हैं। यदि हमारे से उनका वध हुआ, तो जो कुछ हम उपभोग करेंगे वे सब खून से सने होंगे।

- मनुष्य के चेतना के अनुसार (वो जो उनके पिछले जन्मों के कर्मों की प्रतिक्रियाओं के कारण उपार्जित की गई है) वह एक विशिष्ट प्रकार का भौतिक शरीर धारण करता है और एक विशिष्ट प्रकार के नियत कर्तव्य के प्रति आकर्षित होता है जैसे कि ब्राह्मण (बुद्धिमान वर्ग), क्षत्रिय (प्रशासनिक/योद्धा वर्ग), वैश्य (उत्पादन-करता/उत्पादक वर्ग) या शूद्र (मजदूरधार वर्ग)। [टिप्पणी: आज के सन्दर्भ में: डॉक्टर, इंजीनियर, कृषक, शिक्षक, प्रशासक, योद्धा, वकील, मज़दूर, आदि। कृपया विस्तृत जानकारी के लिए 'निष्कर्ष' देखें।] जब व्यक्ति अपने नियत कर्तव्यों को सच्चे ह्रदय से किसी भी लापरवाही के बिना और किसी भी निम्न हेतु बिना (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान को केंद्र में रखकर) निभाते है, तो वह कभी भी किसी भी प्रकार के पाप का भागीदार नहीं बनता; बल्कि वह परिपूर्णता की ओर प्रगति करता है।

भ.गी. २.६, ७ - यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कौनसा श्रेष्ठतर होगा - उन्हें पराजित करना या उनसे पराजित होना? अपनी छोटी सोच की दुर्बलता के कारण मैं अपने नियत कर्तव्य के बारे में पूरी तरह भ्रमित हो चुका हूँ और पूरी तरह अपने

मानसिक संयम को खो चुका हूँ। इस परिस्थिति में आप से मैं निश्चित रूप से पूछ रहा हूं कि मेरे लिए क्या श्रेष्ठतर होगा और मैं एक समर्पित शिष्य के रूप में आपको पूर्ण शरण लेता हूँ। कृपया मुझे निर्देशन करें।

भ.गी. २.८ - इस शोक से मुझे उभरने के लिए कोई उपाय नहीं मिल रहा है, जो मेरी इंद्रियों को बलहीन कर रहा है। भले ही देवताओं के समान ख़ुशहाल और अद्‌वितीय राज्य जीत भी जाऊं, फिर भी मैं इसको दूर नहीं कर पाऊँगा।

भ.गी. २.९, १० - इस तरह कहते हुए गुडाकेश (अर्जुन) ने कहा, “हे गोविंद! मैं युद्ध नहीं करूंगा”, और वह मौन हो गया। तब दोनों सेनाएं के बीच पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने मुस्कुराते हुए निम्नलिखित शब्द कहा।

भ.गी. २.११ - पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान ने कहा: हलाकि तुम एक अनुभवी विद्‌वान की तरह बात कर रहे हो लेखिन ऐसी बात के लिए तुम शोक कर रहे हो जो शोक करने योग्य नहीं है। एक विद्‌वान न तो जीवितों के लिए शोक करता है और न ही मृतकों के लिए।

भ.गी. २.१२ - निःसन्देह ही ऐसा समय नहीं था जब मैं अस्तित्व में नहीं था, ना ही तुम या ये सभी राजा, और हम में से भविष्य में भी किसी का अनस्तित्व नहीं होगा। [टिप्पणी: जीव (जीवात्मा) यह कभी भी नहीं मरता; भौतिक शरीर ही बारंबार जन्म लेकर मरता है।]

भ.गी. २.१३ - जैसे शरीरधारी बद्ध जीव वर्तमान शरीर में निरंतर स्थानांतरित होता है, जैसे कि बचपन से जवानी तक और फिर जवानी से बुढ़ापे तक, वैसे ही वह मृत्यु के समय दूसरे शरीर में स्थानांतरित होता है। एक विद्‌वान कभी भी ऐसे परिवर्तन से विचलित नहीं होता।

भ.गी. २.१४ - अल्पकालीन सुख और दुःख का प्रकट और अप्रकट (वो जो अपने ही पिछले कर्मों की प्रतिक्रियाओं के कारण घटित होते है) यह गरमी और सर्दी के मौसम के प्रकट और अप्रकट जैसा है, हे कौन्तेय। ये अपनी इन्द्रिय अनुभूति से ही अनुभव किए जाते हैं, हे भारत। इन्हें विचलित न हुए सहन करना सीखना चाहिए।

- पिछले जन्मों के कर्मों की प्रतिक्रियाओं के बारे में एक अच्छी जानकारी यह है कि वो इस जन्म में नियत कर्तव्यों के रूप में प्रकट होती हैं। इसलिए, अपने जीवन के अस्तित्व को शुद्ध करने हेतु इन्हें हमेसा प्रमाणिकता से (अत्यन्त ध्यानपूर्वक) निभाना चाहिए. नहीं तो, अपने पिछले कर्मों की प्रतिक्रियाओं की पकड़ (मगरमच्छ पकड़) से छूट पाना बिलकुल असाध्य है।

भ.गी. २.१५ - २२ - जिस तरह मनुष्य अपने पुराने वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी तरह बद्ध जीव अपने वर्तमान शरीर को त्यागकर नवीन शरीर धारण करता है।

- अपनी परिपूर्णता प्राप्त करने तक बद्ध जीव को एक के बाद एक अस्थायी भौतिक शरीर धारण करना ही पड़ता है। अपनी परिपूर्णता प्राप्त करने के बाद वह अपने मूल घर अर्थात अध्यात्मिक धुनिया वापस चला जाता है। [टिप्पणी: भौतिक जगत, जिस मे अभी हम जी रहे है, वह एक विद्यालय जैसा है। वह हमारे ही कार्यों और उसकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर बारबार जन्म-मृत्यु की प्रक्रिया के माध्यम से हमें शिक्षित करता है। अतः इस भौतिक जगत को मृत्युलोक कहा जाता है।]

भ.गी. २.२३ - ३६ - एक योद्धा के रूप में आप अपने विशिष्ट कर्तव्य के बारे में विचार करके तुम्हें यह समझना चाहिए कि अधार्मिक-कार्यों के खिलाफ युद्ध करने के अतिरिक्त तुम्हारे लिए दूसरा कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं है। जब आप अपने नियत कर्तव्यों के प्रति उदासीन रहेंगे, तब तुम्हें निश्चित ही पाप भुगतना पड़ेगा और तुम्हारी अपकीर्ति के बारे में लोग हमेशा चर्चा करेंगे। तुम्हारे प्रसिद्धि को सम्मान देने वाले महायोद्धा यह सोचेंगे कि डर के कारण आपने युद्धभूमि छोड़ दी है। इससे बढकर अधिक दुःखदायी क्या हो सकता है?

भ.गी. २.३७, ३८ - या तो युद्ध में विजय प्राप्त करके तुम राज्य प्राप्त करोगे या फिर गौरपूर्ण मृत्यु प्राप्त करके तुम उच्च गति प्राप्त करोगे, हे कौन्तेय। अतः सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय इनका न विचार करके तुम दृढ़निश्चय के साथ खड़े हो जाओ और युद्ध करो - इस तरह तुम कभी भी पाप के भागी नहीं बनोगे।

भ.गी. २.३९ - ४१ - अब तक मैंने सांख्य-योग अर्थात कार्यों के वैश्लेषिक अध्ययन के आधार पर तुम्हें वर्णन किया है किंतु अब कार्यों के प्रतिफलों की कोई इच्छा के बिना कैसे कार्य करना चाहिए इसके बारे में वर्णन करूँगा। इस मार्ग पर (मनुष्य को शुद्ध भक्तिमय सेवा की ओर ले जाने वाले मार्ग पर) कोई हानि या घटाव नहीं है, हे अर्जुन; थोड़ी सी उन्नति भी मनुष्य को सांसारिक-अस्तित्व के भयानक भय से बचा सकती है।

भ.गी. २.४२ - ४४ - जिसका मन इंद्रिय-उपभोग और स्वर्गिक-ऐश्वर्य में ज्यादा आसक्त रहता है, उसके ह्रदय में शुद्ध भक्तिमय सेवा की दृढ़ निश्चय उत्पन्न नहीं होता। [टिप्पणी: मनुष्य अपने विहित कर्तव्यों को किसी भी लापरवाही के बिना और किसी भी निम्न हेतु बिना (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान को केंद्र में रखकर) निभाकर - जो अन्त में उन्हें भगवत-प्रेम की ओर ले जाते है यही शुद्ध भक्तिमय सेवा की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रभावकारी और सरल मार्ग है। - श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के रसिकरंजन ३.७, ३.१९, ३.३३]

भ.गी. २.४५, ४६ - वेद सामान्य रूप से भौतिक प्रकृति के तीन गुण के बारे में अर्थात कार्य और उसकी प्रतिक्रियाओं के बारे में चर्चा करते हैं। तुम इनसे परे हो जाओ और शुद्ध भक्तिमय सेवा के स्तर पर सदैव स्थित हो जाओ, हे अर्जुन, और तुम सदैव द्वंद्वों और लाभ तथा सुरक्षा के प्रति चिंताओं इनसे मुक्त हो जाओ - इस तरह तुम स्वयं में स्थित हो जाओ।

- भौतिक प्रकृति के तीन गुण, यह और कुछ नहीं बल्कि एक असाधारण दिव्य शक्ति है, जो जीवन के प्रत्येक कदम में हमारे पूर्व कर्मों के प्रतिक्रियाओं के आधार पर हमें नियंत्रित करती है। इन तीन गुण के नियंत्रण के अधीन, हम प्रत्येक कार्य जो करते है वह हमारी चेतना की स्थिति का निर्णय करता है और आखिर में मृत्यु के समय जैसे हमारी चेतना की अवस्था होगी उसके अनुसार हमें अगला भौतिक शरीर प्राप्त होती है (या तो उच्च या निम्न मानव शरीर हो सकता है या इतर ८४ लाख योनियों से किसी रूप में हो सकता है)। [पद्म पुराण में यह उल्लेख है कि ८४ लाख प्रकार के भौतिक शरीर हैं, जिसमें ९ लाख जलजीव शरीर के वर्ग हैं, २० लाख वृक्ष शरीर के वर्ग हैं, ११ लाख कीट शरीर के

वर्ग हैं, १० लाख पक्षी शरीर के वर्ग हैं, ३० लाख जानवर शरीर के वर्ग हैं और ४ लाख मानव शरीर के वर्ग हैं।]

भ.गी. २.४७ - अपने नियत कर्तव्यों को निभाने के लिए ही तुम्हें विशेष अधिकार है लेकिन प्रतिफलों को उपभोग करने के लिए तुम्हें कोई विशेष अधिकार नहीं है (अर्थात अपनी आवश्यकताओं के लिए उसको उपयोग कर सकते हो लेकिन अपनी इन्द्रिय-उपभोग के लिए नहीं)। तुम अपने श्रम के प्रतिफलों के प्रति कभी भी असक्त नहीं होना क्योंकि वो भौतिक प्रकृति के तीन गुण के द्वारा अत्यन्त कठोर रूप से नियंत्रित हैं (अपने ही पिछले कर्मों की प्रतिक्रियाओं के अनुसार)। साथ ही तुम अपने नियत कर्तव्यों को न निभाने के प्रति भी कभी भी आसक्त नहीं होना।

- बद्ध जीव मिथ्य-अहंकार के प्रभाव के कारण विचलित होकर स्वयं को ही अपनी कार्यकलापों का कर्ता मानता है। परंतु, असलियत में, वो कार्यकलापों भौतिक प्रकृति के तीन गुण के द्वारा निभाया जाते हैं (उनके पिछले कर्मों के प्रतिक्रियाओं के अनुसार)। - भ.गी. ३.२७

भ.गी. २.४८ - ५३ - अपने नियत कर्तव्यों को प्रमाणिकता से और हृदयपूर्वक किसी भी लापरवाही के बिना और किसी भी निम्न हेतु बिना निभाकर तुम सभी लौकिक सकाम कर्म को दूर करो, हे धनञ्जय! जो कोई अपने श्रम के प्रतिफलों को उपभोग करना चाहते हैं, वे कृपण हैं (क्योंकि वे अपने मूल्यवान मानव जन्म को बड़ी मुश्किल से (गोर कृपण की तरह) उपयोग करता है)।

भ.गी. २.५४ - अर्जुन ने पूछा: हे केशव! जिसका मन और बुद्धि इस तरह स्थिर हो जाती है, उसका व्यवहार कैसा रहता है?

भ.गी. २.५५ - पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने कहा: जब मनुष्य सांसारिक सुख की उपभोग करने की अपने इच्छाओ को पूरी तरह त्याग दिया हैं और उनका मन स्वयं में ही संतुष्ट रहता है, वे शुद्ध चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थित कहा जाता हैं, हे पार्थ।

भ.गी. २.५६,५७ - जब तक बद्ध जीव अस्थायी भौतिक शरीर धारण करते रहेगा, तब तक भौतिक-अस्तित्व के द्वंद्वों को निश्चित ही वह अनुभव करता रहेगा (उनके पिछले कर्मों के प्रतिक्रियाओं के अनुसार) जैसे कि सुख और दुःख, अच्छा और बुरा,

सफलता और विफलता। जिन्होंने भी इन द्वंद्वों से प्रभावित नहीं होता न तो उनकी प्रशंसा करने के माध्यम से और न ही उनसे घृणा करने के माध्यम से, वे परिपूर्ण ज्ञान में दृढ़तापूर्वक स्थित कहा जाता है।

भ.गी. २.५८ - ६१ - जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने खोल के भीतर समेट लेता है, उसी प्रकार जो कोई अपने इंद्रियों को उनके उपभोग वस्तुवों से दूर कर देता है, वह उत्तम-चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थित कहा जाता है।

- श्रीमद्भागवत में यह उल्लेख है कि इन्द्रिय-उपभोग के लिए की गई चार अत्यंत घृणित पाप कर्म - मांसाहार, नशापान, अवैध संबंध (अर्थात विवाह के बाहर संबंध) और जुआ (अर्थात गलत तारिक से कमाई या आसानी कमाई)। [टिप्पणी: इनमे से गलत तारिक से कमाई या आसानी कमाई सबसे बुरी है क्योंकि वह मनुष्य के शाश्वत जीवन के समझ को विनाश कर देता है (अर्थात उनके समझ शरीर धारणा जीवन के परे नहीं जा सकता)।]

भ.गी. २.६२ - ७० - जिस प्रकार सदा-पूर्ण स्थिर-समुद्र नदियों के लगातार प्रवाह से क्षुब्ध नहीं होता, उसी प्रकार जो कोई अपनी इच्छाओं के लगातार प्रवाह से क्षुब्ध नहीं होता (वो जो अपने ही पिछले कर्मों की प्रतिक्रियाओं के कारण प्रकट होता है) - वही शांति प्राप्त कर सकता है; ना कि वह जो उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता है।

भ.गी. २.७१, ७२ - मनुष्य सांसारिक सुख की उपभोग करने की अपनी इच्छाओं को त्यागने के बाद जो कोई स्वामित्व और मिथ्य-अहंकार की भावना रहित रहता है - वही वास्तविक शांति प्राप्त कर सकता है| यदि इस तरह कोई (मृत्यु के समय में भी) स्थित हो जाते है, तो वह परमधाम प्राप्त करते है।

महत्वपूर्ण श्लोक:

मैं परब्रह्म के कारण तीनों लोकों में कोई नियत कर्तव्य मेरे लिए विहित नहीं है, हे पार्थ - फिर भी, मैं खुद होकर अपने सभी नियत कर्तव्यों को सावधानपूर्वक निभाने में संलग्न रहता हूँ। - भ.गी. ३.२२

अर्जुन ने पूछा: हे वार्ष्णेय! वास्तविक में क्या मनुष्य को पाप कार्य करने के लिए प्रेरित करता है मानो उसे न चाहते हुए भी जबरदस्ती शामिल किया गया हो? - भ.गी. ३.३६

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने कहा: हे अर्जुन, निश्चित ही काम वासना ही इसका कारण है, जो अपने ही पिछले कर्मों के प्रतिक्रियाओं से उपार्जित की गई रजोगुण के सम्बन्ध से प्रकट होती है। काम वासना, यह सबकुछ निगलने वाले सबसे बड़ी पापी शत्रु है, जो बाद में क्रोध के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए, जीवन के प्रारंभ से ही अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करके पाप का महान प्रतीक यह काम वासना को वशीभूत करो, और इस तरह ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार का नाश करने वाले इस पापी शत्रु का नाश करो, हे भरतरिषभ। - भ.गी. ३.३७, ४१

यदि भले ही तुम्हें सभी पापियों में से सबसे बड़े पापी ऐसे माने जाओगे फिर भी जब अध्यात्मिक-आत्मज्ञान रूपी नाव पर तुम स्थित हो जाते हो, तब सांसारिक-अस्तित्व रूपी भौसागर को तुम पार कर पावोगे। जिस तरह प्रज्वलित-अग्नि लकड़ी को जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह अध्यात्मिक-आत्मज्ञान रूपी प्रज्वलित-अग्नि व्यक्ति के पिछले कर्मों की सभी प्रतिक्रियाओं को भस्म कर देती है, हे अर्जुन। - भ.गी. ४.३६, ३७

त्याग कार्य (अपने व्यवसाय के रूप में), दान (अपने आश्रम के रूप में) और अध्यात्मिक-आत्मसंयम (अपनी साधना के रूप में) - इन्हें त्यागना नहीं चाहिए। वास्तविक में त्याग कार्य, दान और अध्यात्मिक-आत्मसंयम प्रसिद्ध आत्माओं को भी शुद्ध कर सकता हैं - लेखिन इन्हें कोई प्रतिफल की अपेक्षा के बिना एक ज़िम्मेदारी के रूप में निभाना चाहिए, हे पार्थ। यह मेरा अन्तिम मत है। [टिप्पणी: जैसे यहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वयं कहते है (यह उनके अन्तिम मत है), यही संपूर्ण भगवद्गीता का सारांश है।] - भ.गी. १८.५-६

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने अर्जुन से कहा: क्या, हे पार्थ, मेरे उपदेशों को तुमने एकाग्र मन से सुना? क्या अब तुम्हारा अज्ञान नष्ट हुआ, हे धनंजय? - भ.गी. १८.७२

अर्जुन ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान से कहा: हे अच्युत! मेरा मोह अब समाप्त हो चुका है और आपकी कृपा से मेरी स्मृति मुझे वापस मिल चुकी है। अब मैं दृढ़ रूप से स्थित हूँ और सभी संदेहों से मुक्त हूँ और आपके आदेश आनुसार कर्म निभाने के लिए मैं तत्पर हूँ। - भ.गी. १८.७३

जहाँ कहीं योगेश्वर (कृष्ण, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान) हैं और जहाँ कहीं धनुर्धर (अर्जुन, शुद्ध भक्त) हैं, निश्चय ही वहाँ सर्वैश्वर्य, विजय, असाधारण-शक्ति, दृढ़ता और नैतिकता होंगे। - भ.गी. १८.७८

निष्कर्ष: (भ.गी. १८.५-६ के अनुसार)
यद्यपि व्यक्ति के नियत कर्तव्य अनेक हो सकते हैं, फिर भी उन्हें तीन प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।
१. व्यवसाय संबंधित नियत कर्तव्य (वर्ण)
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र। [आज के सन्दर्भ में डॉक्टर, इंजीनियर, कृषक, शिक्षक, प्रशासक, योद्धा, वकील, मज़दूर, आदि।]
२. कुटुंब संबंधित नियत कर्तव्य (आश्रम)
माता-पिता, बच्चे, सास-ससुर और अन्य जैसे कि संत-महात्मा, परस्पर-अवलम्बित जीव अर्थात सभी जीव, इत्यादि संबंधित नियत कर्तव्य। [टिप्पणी: भक्तिमय सेवा यह एक अनुष्ठानिक कार्यों का समूह नहीं है; यह एक जिम्मेदारी का कार्य है, जो शरीर तथा स्वयं के माध्यम से एक साथ निभाया जाता है अर्थात सदैव नियत कर्तव्यों में शरीर को सलग्न रखना चाहिए (भ.गी. ३.१९) और साथ ही स्वयं भगवत-प्रेम में तल्लीन रहना चाहिए। (भ.गी. १२.८))]
३. अध्यात्मिक-आत्मसंयम संबंधित नियत कर्तव्य (साधना)

मनुष्य की चेतना की स्थिति के अनुसार उनका साधना के स्तर विविध प्रकार का होता है: विराट-रूप, सायुज्य, सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, श्रृंगार और श्रृंगार-औदार्य। [वर्तमान युग के लिए अर्थात कलयुग के लिए और सब के लिए सबसे सरल और आसानी साधना - (घर में) भगवान के दिव्य नामों का सामूहिक कीर्तन (वृंदावन निवासियों जैसे असीमित आसक्ति के कारण) (जिसकी श्रीचैतन्य-चरितामृत में विस्तृत रूप में व्याख्या की गई है।]

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे